वृद्धावस्था का रसायन शास्त्र

आर. रामचंद्र मूर्ति

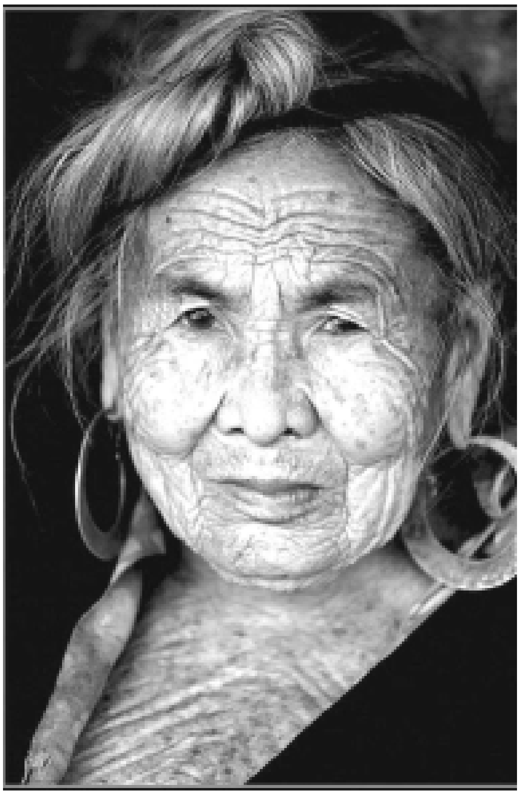

समय के साथ अधिकांश सजीवों में विभिन्न जैव-रासायनिक और शरीर-क्रियात्मक पतन होते हैं और इनकी वजह से जीव उम्र सम्बंधी रोगों का शिकार होने लगता है। एक वृद्ध होते मानव शरीर में काम करते विविध बलों की जटिलता इस सरल सवाल से उजागर हो जाती है - 'आपकी उम्र कितनी है?' किसी व्यक्ति की उम्र नापने के तीन अलग-अलग तरीकें हैं :

कैलेण्डर उम्र - यानी व्यक्ति की उम्र कैलेण्डर के अनुसार कितनी है।

जैविक उम्र - जीवन के प्रमुख लक्षणों व कोशिका की प्रक्रियाओं के हिसाब से व्यक्ति की उम्र कितनी है।

मनोवैज्ञानिक उम्र - व्यक्ति को स्वयं अपनी उम्र कितनी लगती है।

इनमें से सिर्फ पहली वाली ही निश्चित है, हालांकि यह सबसे अविश्वनीय है। 60 वर्षीय व्यक्ति उतना ही तन्दुरुस्त हो सकता है जितना वह 30 साल की उम्र में था, जबकि कोई दूसरा व्यक्ति शायद 70-80 बरस जैसे शरीर का मालिक हो।

किसी व्यक्ति की वास्तविक उम्र जानने के लिए दूसरा वाला माप यानी जैविक उम्र ज़्यादा उपयोगी होती है। इससे पता चलता है कि समय ने किसी व्यक्ति के अंगों व ऊतकों पर क्या असर डाला है।

मुक्त मूलक और उम्र

उम्र बढ़ने का काफी असर ऊतकों के जिस भाग पर पड़ता है वह कोलाजेन है। कोलाजेन संयोजी ऊतकों (यानी अंगों को आपस में जोड़ने वाले ऊतकों) का प्रमुख प्रोटीन होता है। कई सारे भौतिक कारक कोलाजेन में उम्र वृद्धि को प्रभावित करते हैं। धूम्रपान, धूप से ज़्यादा सम्पर्क, विटामिनों की कमी, कुपोषण और निर्जलीकरण ऐसे कुछ मुख्य कारक हैं। अलग-अलग कोलाजेन अणु एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं; इस प्रक्रिया को क्रॉस लिंकेज कहते हैं। इसका कारण मुक्त मूलकों की विनाशकारी प्रकृति है। ये मुक्त मूलक डी.एन.ए. सहित कई महत्वपूर्ण अणुओं पर हमला करते हैं और उन्हें क्षति पहुंचाते हैं।

मुक्त मूलक ऐसे परमाणु या अणु होते हैं जिनके पास जोड़ीविहीन इलेक्ट्रॉन हों। अपने इस इलेक्ट्रॉन की जोड़ी बनाने की जुगाड़ में ये कोशिका द्रव्य में किसी भी अणु पर हमला करके उसे हानि पहुंचाते हैं। कुछ मामलों में मुक्त मूलक फायदेमंद भी होते हैं। जैसे हमारे प्रतिरक्षा तंत्र की सफेद कोशिकाएं मुक्त मूलकों की मदद से ही बाहरी बैक्टीरिया या वायरस को नष्ट करती हैं।

1956 में नेब्रास्का विश्वविद्यालय के डेनहैम हार्मेन ने सबसे पहले यह विचार प्रस्तुत किया था कि कोशिका स्तर पर मुक्त मूलक ही वृद्धावस्था के मूल में होते हैं। उन्होंने सुझाया था कि महत्वपूर्ण अणुओं में मुक्त मूलक प्रेरित क्षति का जमा होते जाना मनुष्यों में वृद्धावस्था का प्रमुख कारण है। आगे चलकर हार्मेन ने इस सिद्धांत को और परिष्कृत करते हुए बताया था कि मुक्त मूलकों के हमले का प्रमुख शिकार कोशिकाओं में स्थित माइटोकॉण्ड्रिया होते हैं।

उम्र के साथ कोशिका के कई कार्य क्षीण होते जाते हैं। माइटोकॉण्ड्रिया में होने वाली श्वसन क्रिया, न्यूक्लिक एसिड का निर्माण, ढांचागत व एन्ज़ाइमनुमा प्रोटीनों का निर्माण, कोशिका में ग्राहियों आदि का निर्माण वगैरह सब क्रियाएं कम होने लगती हैं। बुढ़ाती कोशिकाएं पोषक पदार्थ ग्रहण करने तथा गुणसूत्रों की टूट-फूट की मरम्मत करने की क्षमता खोने लगती हैं। विचित्र आकृति के केन्द्रक, माइटोकॉण्ड्रिया में रिक्तिकाएं, एण्डोलाज़्मिक रेटिकुलम में कमी और क्षतिग्रस्त गोल्गी उपकरण आदि इसके लक्षण होते हैं। कोशिका में लिपोफुकसिन नामक रंजक का संग्रह होने लगता है - यह रंजक शारीरिक क्षति का सूचक है।

स्वयं की रक्षा करने हेतु प्रत्येक कोशिका ऐसे एन्ज़ाइम बनाती है जो मुक्त मूलकों को नष्ट करें या उन्हें असरहीन बना दें। इन मुक्त मूलक भक्षियों में विटामिन सी और ई जैसे आक्सीकरण-रोधी पदार्थ तथा कई एन्ज़ाइम होते हैं। यह सही है कि कोशिका के पास एक सुगठित ऑक्सीकरण-रोधी रक्षा तंत्र है मगर उम्र बढ़ने के साथ मुक्त मूलकों के उत्पादन और रक्षा प्रणाली के बीच असंतुलन पैदा होने लगता है। इन सब बातों से पता चलता है कि मुक्त मूलकों से होने वाली क्षति ही एकमात्र क्षति नहीं है।

डी.एन.ए. और वृद्धावस्था

पहले माना जाता था कि डी.एन.ए. एक स्थायी अणु है जो कोशिका के केन्द्रक में विराजमान रहता है। मगर अब यह जानी-मानी बात है कि डी.एन.ए. में स्वयं की मरम्मत की अद्भुत क्षमता है। मुक्त मूलकों और अन्य किस्म के क्षतिकारक आक्रमण होने पर डी.एन.ए. के सूत्र में कम से कम पांच प्रकार की त्रुटियां आ सकती हैं। यदि हमारे जीन्स ऐसी क्षति को चुपचाप झेलते रहें, तो जल्दी ही हमारा कोड गड़बड़ियों का भण्डार बन जाएगा और जीवन असंभव हो जाएगा। मगर डी.एन.ए. में खुद की मरम्मत करने की क्षमता होती है। वह यह पता कर सकता है कि किस तरह की टूट-फूट हुई है और विशेष एन्ज़ाइमों की मदद से क्षतिग्रस्त हिस्सों को दुरुस्त कर दिया जाता है। मरम्मत प्रणाली में गड़बड़ियों का सम्बंध वृद्धावस्था से देखा गया है। यदि हम विभिन्न प्राणियों की औसत आयु का ग्राफ बनाएं तो यह ग्राफ इन प्राणियों की डी.एन.ए. मरम्मत प्रणाली की कार्यक्षमता से मेल खाता है। मानव डी.एन.ए. में स्वयं की मरम्मत करने की क्षमता सर्वाधिक होती है।

डी.एन.ए. क्षति सम्बंधी दूसरा प्रमाण कोशिका विभाजन सम्बंधी प्रयोगों से मिलता है। वृद्धावस्था के एक सरल प्रायोगिक मॉडल से यह अवधारणा विकसित हुई थी कि कोशिकाओं में विभाजन की क्षमता सीमित होती है। टिशू कल्चर में रखे जाने पर सामान्य मानव फाइब्रोब्लास्ट में विभाजन की क्षमता सीमित होती है। बच्चों की कोशिकाएं वयस्क कोशिकाओं की अपेक्षा अधिक बार विभाजन कर पाती हैं। दूसरी ओर, प्रोजेरिया और वर्नर सिंड्रोम जैसी बीमारियों से ग्रस्त व्यक्ति की कोशिकाओं की विभाजन क्षमता और भी कम होती है। ये दोनों बीमारियां असमय वृद्धावस्था की द्योतक हैं। इन मामलों में चंद विभाजन के बाद कोशिकाएं स्थायी अविभाजन की स्थिति में थम जाती हैं - इसे कोशिकीय सन्यास कहते हैं।

कोशिकीय वृद्धावस्था के दौरान जीन अभिव्यक्ति में कई बदलाव आते हैं मगर प्रमुख सवाल यह है कि इनमें से किसे कारण कहें और किसे प्रभाव। उदाहरण के लिए कुछ प्रोटीन्स हैं जो कोशिका वृद्धि के चक्र को आगे बढ़ने से रोकते हैं - बुढ़ाती कोशिकाओं में इनके जीन्स अति-अभिव्यक्त होते हैं।

इस सवाल पर सघन खोजबीन चल रही है कि विभाजित होती कोशिका उस समय तक हो चुके

विभाजनों की संख्या का हिसाब कैसे रखती है। एक तरीका यह हो सकता है कि प्रत्येक कोशिका विभाजन के समय गुणसूत्र के सिरों की प्रतिलिपि अपूर्ण बनती है - यानी गुणसूत्र के सिरे (टीलोमेयर) छोटे होते जाते हैं और अंततः कोशिका विभाजन रुक जाता है। प्रत्येक गुणसूत्र के सिरे पर डी.एन.ए. की एक श्रृंखला होती है जो किसी प्रोटीन का कोड नहीं है - इसे टीलोमेयर कहते हैं। कोशिका विभाजन के समय इस पूरे टीलोमेयर की प्रतिलिपि नहीं बनती। इस तरह टीलोमेयर छोटा होता जाता है।

अधिकांश कायिक कोशिकाओं में टीलोमरेज़ नहीं होता। यह वह एन्ज़ाइम है जो टीलोमेयर का पुनर्निर्माण करता है। इन्सानों में मात्र जनन कोशिकाओं और भ्रूण में टीलोमेयर का पुनर्निर्माण होता है। दूसरी ओर, कैंसर कोशिकाओं में टीलोमरेज़ पुनः सक्रिय हो जाता है और उनके टीलोमेयर छोटे नहीं होते - इसलिए कैंसर कोशिकाओं में विभाजन की असीमित क्षमता होती है।

यह प्रमाण भी मिला है कि उम्र बढ़ने के साथ व्यक्ति के गुणसूत्र में टीलोमेयर की लम्बाई घटती जाती है।

हार्मोन का सम्बंध

1980 के दशक में जे. ग्लेज़र ने एक विचित्र स्टीरॉइड डी.एच.ई.ए. पर शोध किया था। यह स्टीरॉइड तनाव हार्मोन (ग्लूकोकॉर्टिकाइड्स वगैरह) और कई अन्य स्टीरॉइड हार्मोन्स का पूर्ववर्ती होता है। यह देखा गया था कि शल्य क्रिया की प्रतीक्षा कर रहे मरीज़ों में कॉर्टिसॉल की मात्रा काफी बढ़ जाती है। यह शल्य क्रिया के अगले दिन भी बढ़ी रहती है और डी.एच.ई.ए. की मात्रा में थोड़ी वृद्धि होती है। दो हफ्ते बाद कॉर्टिसॉल का स्तर तो बढ़ा रहता है मगर डी.एच.ई.ए. की मात्रा कम हो जाती है। इससे पता चलता है कि तनाव के कारण डी.एच.ई.ए. का भण्डार चुक जाता है।

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड्स का निर्माण एड्रीनल ग्रन्थि द्वारा किया जाता है और यह तनाव के समय शरीर को जगाए रखने का काम करता है। ग्लूकोकॉर्टिकॉइड्स लीवर और मांसपेशियों में ग्लायकोजन का विघटन करके ग्लूकोज़ उपलब्ध कराने का काम करते हैं ताकि यह ज़रूरत पड़ने पर शरीर के काम आ सके। जब ग्लायकोजन खत्म हो जाता है तो यही ग्लूकोकॉर्टिकॉइड्स प्रोटीन का विघटन शुरू कर देते हैं।

इसका निष्कर्ष यह था कि यदि डी.एच.ई.ए. का स्तर ऊंचा रहे, तो शरीर तनाव को सहन कर पाएगा और तनाव-जनित प्रतिक्रिया भी कम होगी। तब बुढ़ाने की प्रक्रिया धीमी होगी।

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड्स का सबसे आम उदाहरण कॉर्टिसॉल है जो कुछ प्राणियों में बुढ़ाने की प्रक्रिया में भूमिका निभाता है। प्रशान्त सागर की साल्मन एक अच्छा उदाहरण है। अण्डे से निकलने बाद शिशु साल्मन प्रथम चार वर्ष समुद्र में गुज़ारती है और फिर रहस्यमय ढंग से मीठे पानी की उसी झील की ओर यात्रा करती है जहां वह पैदा हुई थी। धारा के विपरीत इस साहसिक सफर के बाद परिपक्व साल्मन अण्डे देती है और लगभग तत्काल मर जाती है। रातों रात यह मछली कैसे बूढ़ी होकर एक दुर्बल चुके हुए प्राणी में तब्दील हो जाती है? इसका कारण सिर्फ थकान नहीं है बल्कि एक अन्दरूनी घड़ी है जो अण्डोत्सर्ग होने तक रुकी रहती है और फिर अचानक एड्रीनल ग्रन्थि से भारी मात्रा में कॉर्टिसॉल मुक्त कर देती है। कॉर्टिसॉल समस्त प्राणियों में तनावजनक हार्मोन होता है। साल्मन में यह मृत्यु-हार्मोन है।

कई जीव वैज्ञानिक मानते हैं कि मनुष्य के शरीर में भी एक उम्र-घड़ी होती है। और यदि है, तो इसमें काफी विविधता होगी क्योंकि मनुष्यों की आयु का परास काफी बड़ा है। जैविक आयु घड़ी के प्रवर्तकों ने हायपोथेलेमस में तंत्रिकाओं के एक छोटे-से पिण्ड में जैव-लय की खोज की है। यह पिण्ड पेंसिल की नोक से बड़ा नहीं है मगर समय का अंदाज़ रखता है। मगर शरीर की जैविक घड़ी खोजने से बुढ़ाने की पहेली नहीं सुलझी है क्योंकि हायपोथेलेक्स ग्रन्थि मस्तिष्क से, हार्मोन तंत्र से और प्रतिरक्षा तंत्र से जुड़ी होती है। तो इनमें से कोई भी या सारे तंत्र बुढ़ाने की प्रक्रिया में शामिल हो सकते हैं।

इस मोड़ पर मिलेटोनिन की बात करना लाज़मी है। मिलेटोनीन एक हार्मोन है जिसका निर्माण पीनियल ग्रन्थि करती है। इसकी खोज 1985 में लर्नर व उनके साथियों ने की थी। मिलेटोनीन का सम्बंध बुढ़ाने से माना जाता है क्योंकि इसमें ऑक्सीकरण-रोधी गुण पाए जाते हैं। यह मुक्त मूलकों का भक्षण करता है और ऑक्सीकरण-रोधी है। ए.वी. मैशन के मुताबिक मिलेटोनीन मनोसंवेदी है; कई प्रकार के ध्यान और योग से मिलेटोनीन का स्तर बढ़ना दर्शाया गया है। चूंकि ध्यान और मिलेटोनीन स्तर, दोनों ही चिंता, तनाव, हृदय गति और रक्तचाप कम करते हैं इसलिए कहा जाता है कि ध्यान के लाभदायक प्रभाव पीनियल ग्रन्थि की सक्रियता व मिलेटोनीन की बढ़ी हुई मात्रा के परिणाम हैं।

वृद्धावस्था की दिक्कतें

हृदय सम्बंधी

कई बार कहा जाता है कि हमारी उम्र अपनी धमनियों के बराबर होती है। इससे पता चलता है कि धमनियों की बीमारियां, जो उम्र के साथ बढ़ती हैं, आम तौर पर बुढ़ापे के समस्त लक्षणों के मूल में होती हैं। धमनियों की क्षति, खासकर एथेरोस्क्लेरोसिस विकसित देशों में कमज़ोरी और मृत्यु का सबसे प्रमुख कारण है। यह कहना भी अनुचित न होगा कि कई अन्य बीमारियों के मूल में भी कोशिकाओं को मिलने वाली ऑक्सीजन व पोषण की कमी होती है।

बुढ़ापे का एक सामान्य कारण है रक्तचाप में क्रमशः वृद्धि जिसे इडियोपैथिक उच्च रक्तचाप कहते हैं। इसमें शुरुआत में रक्तवाहिनियों का प्रतिरोध स्थायी रूप से बढ़ जाता है। उच्च रक्तचाप इस प्रतिरोध यानी रुकावट के विरुद्ध एक उपाय है ताकि ऊतकों को पर्याप्त खून मिलता रहे। मगर परेशानी यह है कि बढ़े हुए रक्तचाप का बड़ी रक्त वाहिनियों पर हानिकारक असर होता है।

त्वचा पर बदलाव

मोटे तौर पर बुज़ुर्ग व्यक्तियों को उनकी झुर्रियों और चेहरे की लटकती मांसपेशियों से पहचाना जा सकता है। जैव रासायनिक दृष्टि से त्वचा में कोलाजेन और इलास्टिन की मात्रा कम हो जाती है। इन दोनों प्रोटीन का निर्माण फाइब्रोब्लास्ट द्वारा किया जाता है। यह भी पता चला है कि चमड़ी के उन हिस्सों पर झुर्रियों ज़्यादा पड़ती हैं जो धूप के सम्पर्क में रहते हैं। यह पराबैंगनी प्रकाश का असर हो सकता है।

हड्डियों में बदलाव

बुज़ुर्ग लोग प्रायः झुक जाते हैं और उन्हें फ्रेक्चर की आंशका भी अधिक होती है। रजोनिवृत्ति के बाद कई महिलाओं में और पुरुषों में कुछ हद तक हड्डियों की क्षति हो जाती है। अधिकांश मामलों में यह अस्थिछिद्रता के कारण होता है। ऐसा होने पर साधारण से झटके से भी फ्रेक्चर हो सकता है।

अब यह स्पष्ट होने लगा है कि ज़्यादा उम्र में अस्थिछिद्रता होने की संभावना उन लोगों में ज़्यादा होती है जो युवावस्था में निष्क्रिय रहे थे या जिनके भोजन में कैल्शियम और विटामिन की कमी रही थी। कई सारे अध्ययनों से पता चल रहा है कि बढ़ती उम्र की कई समस्याओं से निपटने की तैयारी युवावस्था में की जा सकती है।

प्रतिरक्षा में दुर्बलता

बढ़ती उम्र में प्रतिरक्षा तंत्र अपेक्षाकृत कमज़ोर हो जाता है और ऐसे कई संक्रमण सिर उठाने लगते हैं जो बरसों पहले शरीर में आए थे मगर सुप्त पड़े थे। जैसे बुढ़ापे में टी.बी. फिर से उभर सकती है, खास तौर से तब जब व्यक्ति कैंसर के इलाज हेतु प्रतिरक्षा-दमनकारी औषधियों का सेवन कर रहा हो। इसी प्रकार छोटी माता का वायरस शरीर में अपने आवास (नर्व गेंग्लिया) में से निकलकर फिर उत्पात मचा सकता है। बुज़ुर्गों में कैंसर की आंशका भी इसीलिए बढ़ जाती है कि प्रतिरक्षा तंत्र दुर्बल होने लगता है।

अंगों का सिकुड़ना

बुज़ुर्ग व्यक्तियों में शरीर के कई अंग अपेक्षाकृत छोटे हो जाते हैं और उनका रंग असामान्य-सा भूरा हो जाता है। इस स्थिति को 'ब्राउन एट्रॉफी' कहते हैं। भूरापन

लिपोफुकसिन की अत्यधिक मात्रा के कारण आता है। लिपोफुकसिन एक रंजक है जिसे 'टूट-फूट रंजक' भी कहते हैं क्योंकि यह किसी अंग के अत्यधिक उपयोग का द्योतक माना जाता है।

तंत्रिका विघटन

अल्ज़ीमर रोग में तेज़ी से तंत्रिकाओं का विघटन होता है। इस रोग की खोज 1906 में एलोइस एल्ज़ीमर ने की थी। उन्होंने एक ऐसी महिला के शव की चीरफाड़ की थी जो मृत्यु से पहले तीन साल तक मानसिक रूप से दुर्बल होती गई थी। उसके मस्तिष्क में ऐसी क्षति हो चुकी थी जो सामान्य वृद्धावस्था का नतीजा नहीं थीः ऐंठी हुई, उलझी हुई तंत्रिकाएं और प्लाक का जमाव। एल्ज़ीमर की इस खोज का महत्व पहचानने में लगभग सत्तर साल लगे।

हाल के वर्षों में एल्ज़ीमर रोग की पहचान नाटकीय ढंग से बढ़ी है। सठियाने (सेनाइल डिमेंशिया) से पीड़ित लगभग 50-60 प्रतिशत व्यक्ति एल्ज़ीमर से प्रभावित पाए गए हैं। सठियाना या डिमेंशिया शब्द कई सारे लक्षणों का परिचायक है : भूलना, गफलत, दिग्भ्रम, ज़्यादा देर ध्यान न दे पाना, चिड़चिड़ापन वगैरह। यह काफी खतरनाक रोग है क्योंकि रोगी के अलावा यह परिवार व दोस्तों को भी बुरी तरह प्रभावित करता है। यह सीखे हुए हुनर, गणित वगैरह भूलने से शुरू होता है और धीरे-धीरे पूरा दिमाग ठप हो जाता है।

इस बीमारी के कारणों के बारे में कई अटकलें लगाई गई हैं। जैसे कोई अत्यंत 'सुस्त वायरस' जिसे परिपक्व होने में दशकों लग जाते हैं, प्रतिरक्षा तंत्र में कोई गड़बड़ी जिसमें प्रतिरक्षा तंत्र खुद व्यक्ति की तंत्रिकाओं को नष्ट करने लगता है, तंत्रिकाओं में एल्यूमीनियम का अत्यधिक संग्रह वगैरह परिकल्पनाएं हैं मगर किसी को भी प्रमाणित नहीं किया गया है। हालांकि इसके इलाज व रोकथाम के कई उपाय बताए गए हैं, मगर अभी अल्ज़ीमर लाइलाज ही लगता है। एक बार रोग शुरू हो जाए, तो डॉक्टर मरीज़ को नींद की गोलियां देने के अलावा कुछ नहीं कर पाते।

बुढ़ापे की एक और डरावनी बीमारी पार्किन्सन रोग है। इसमें भी तंत्रिकाओं का विघटन होता है जिसकी वजह से मांसपेशियों की हरकतें बेकाबू हो जाती हैं और चलने-फिरने में दिक्कत होती हैं। अंततः शरीर इतना अकड़ जाता है कि मरीज़ चल भी नहीं पाता। पार्किन्सन रोग के बारे में माना जाता है कि डोपामीन नामक एक मस्तिष्क रसायन की कमी से यह रोग होता है। डोपामीन तंत्रिकाओं के बीच संवाद का रसायन है।

कुल मिलाकर देखा जाए तो संतुलित आहार तथा योग व ध्यान तथा अन्य व्यायाम के ज़रिए कुछ हद तक बुढ़ाने की प्रक्रिया को टाला जा सकता है। मगर जैव-रासायनिक दृष्टि से अमरत्व प्राप्त करना असंभव है - किसी भी जीव के लिए। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

वार्षिक सदस्यता

सिर्फ 150 रुपए